अतिरिक्त

(Previously published as chapter 9 of this book of 10 chapters. Now is shifted to CHETI SAKAI TO CHETI SAKAI TO CHET #4.)

जीवन है द्वार

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं--एक मित्र ने पूछा है कि हमारे देश की क्या यह सबसे बड़ी बीमारी नहीं रही कि हमने बहुत ऊंचे विचार किए, लेकिन व्यवहार बहुत नीचा किया। सिद्धांत ऊंचे और कर्म बहुत नीचा। इसीलिए बहुत बड़े-बड़े व्यक्ति तो पैदा हो सके, लेकिन, भारत में एक बड़ा समाज नहीं बन सका?

इस संबंध में दो तीन बातें समझनी उपयोग की होंगी। पहली बात तो यह--यदि विचार श्रेष्ठ हो तो कर्म अनिवार्यरूपेण श्रेष्ठ हो जाता है। इस भ्रम में रहने की कोई जरूरत नहीं है कि विचार हमारे श्रेष्ठ थे और फिर कर्म हमारा निकृष्ट रहा। श्रेष्ठ विचार अनिवार्यरूपेण श्रेष्ठ कर्म के जन्मदाता बनते हैं। अगर श्रेष्ठ कर्म न जन्मा हो तो जानना कि विचार ही भ्रांत रहे होंगे, श्रेष्ठ न रहे होंगे। यह असंभव है कि विचार सत्य के हो और आचरण असत्य की और चला जाए। यह असंभव है कि ज्ञान तो स्पष्ट हो और जीवन भटक जाए। यह तो ऐसे ही हुआ कि हम कहें कि आंख तो बिल्कुल ठीक थी लेकिन फिर भी हम दीवार से टकरा गए। दरवाजे से न निकल सके। अगर दीवार से टकरा गए हैं, तो आंख ठीक न रही होगी। आंख वीक रही होती तो दरवाजे से निकल गए होते। दीवार से टकराने की कोई जरूरत न थी।

ज्ञान के ठीक होने का सबूत क्या है? ज्ञान के ठीक होने का सबूत यही है कि उसके अनुकूल जीवन बदल जाए। अगर जीवन न बदलता हो तो जान बुनियादी रूप से गलत रहा होगा। कहीं न कही भ्रांत रहा होगा। यह तो पहली बात, कि इस मूल्य में तो यह भ्रम है कि हमारा ज्ञान तो बड़ा श्रेष्ठ है, लेकिन आचरण हमारा बड़ा नीचा है। तो हम शायद ऐसा सोचते हैं कि ज्ञान को आचरण में नहीं ला पाए इसलिए ऐसी भूल हो गयी। ज्ञान आचरण में आ ही जाता है, जैसे मनुष्य के पीछे छाया चलती है। ज्ञान को आचरण में लाने से बचना असंभव है। ज्ञान ही भ्रांत रहा हो तो बात हो सकती है। मेरी दृष्टि में, हमें ज्ञान के ही आमूल आधार बदलने होंगे। ज्ञान में ही कुछ बुनियादी भूलें थीं। जैसे मैं कुछ भूलें गिनाऊं, जिनकी वजह से वह हमारे समाज का आचरण नहीं बन सका। जैसे--इस देश का पूरा ज्ञान जीवन-विरोधी है--लाइफ निगेटिव है। जिस देश का ज्ञान जीवन-विरोधी हो उस देश का ज्ञान कभी जीवन रूपांतरित करने वाला सिद्ध नहीं हो सकता है। जिस देश का ज्ञान मोक्ष पाने के आस-पास मंडराता हो, जिस देश का ज्ञान मृत्यु के बाद के लिए विचार करता हो, जिस देश का ज्ञान जीवन से मुक्त होने की, जीवन से आवागमन का छुटकारा पाने की चेष्टा करता हो, उस देश का ज्ञान कभी भी जीवन का आधार नहीं बन सकता। ज्ञान लाइफ अफरमेटिव हो। जीवन को विधायकता देता हो। जीवन को स्वीकृति देता हो। जीवन के आनंद को उपलब्ध करने करने की दिशा देता हो--तो ज्ञान आचरण में और जीवन में उतर सकता है। इस मुल्क का जो ज्ञान है, वह स्वीसाइडल है--वह आत्मघाती है। आत्मघाती ज्ञान को अगर जीवन में उतारना हो तो कुछ थोड़े से लोग ही उतार सकते हैं जिनके भीतर स्वीसाइड की मौलिक इन्सर्टिक्ट हो, बाकी लोग नहीं उतार सकते। जिन लोगों के लिए जीवन से ज्यादा महत्वपूर्ण जीवन के बाद का लोक हो, और जिनके

लिए जिंदा रहने से ज्यादा महत्वपूर्ण मर जाने की कला हो। और जिसके लिए जीने से भाग जाना कीमती लगता हो। ऐसे थोड़े से रुग्ण--चित्त लोग--बीमार-चित्त लोग ही इस ज्ञान को जीवन में उतार सकते हैं। शेष का पूरा समाज अप्रभावित रह जाएगा। इस देश की पूरी की पूरी चिंतना पारलौकिक है। अदरवर्ल्डली है। इसलिए बेमानी हो गयी है। ज्ञान तो इस जीवन को बदलने, इस जीवन को सुंदर बनाने, इस जीवन को श्रेष्ठता देने, इस जीवन को एक कलात्मक रूप देने के लिए हो, तो जीवन को बदल सकता है। पहली बात यह।

दूसरी बात यह कि हम, जीवन में जो भी रसपूर्ण है, जीवन में जो भी भोगने योग्य है, जीवन में जो भी सुंदर है, सब की गहरी निंदा से भरे हुए हैं। ठीक से कहा जाए तो हम एक ऐसे ज्ञान को जन्म दिए हैं जो मेसोचिस्ट भी है और सैडिस्ट भी है। जो दूसरों को दुख देने में भी रस लेता है और खुद को दुख देने में भी रस लेता है। सुख कोई हमारी धारणा नहीं है। अगर कोई आदमी अपने को दुख दे तो वह महात्मा हो जाता है। और जो आदमी अपने को जितना दुख देने में कारीगिरी दिखलाए उतना श्रेष्ठ और पूज्य हो जाता है। तो अगर पूरा समाज मेसोचिस्ट हो जाए--सारे का सारा समाज स्व-दुःख वादी हो जाए, तो ही हमारा ज्ञान आचरण में आ सकता है, अन्यथा नहीं आ सकता। हमारा ज्ञान, जिसके मन में थोड़ी भी सुख की कामना हो, उसके आचरण मग आने वाला नहीं है। हजम सुख को स्वीकार ही नहीं करते। हमने किसी सुख की वृत्ति को सम्मान से नहीं देखा है। अगर एक आदमी ठीक से खाना खाए तो सम्मानित नहीं हो समता। भूखों मरे--उपवास करे--तो सम्मानित हो सकता है। ठीक से कपड़े पहने तो सम्मानित नहीं हो सकता। नंगा खड़ा हो जाए तो सम्मानित हो सकता है। कोई आदमी जितना अपने को दुख दे, जितना सताए, उतना त्यागी, और त्याग की बड़ी महिमा है। अब यह दुर्भाग्य की बात है कि अगर कोई भी समाज इस तरह के दृष्टिकोण पकड़ेगा। तो कितने लोग अपने की दुख देने के लिए तैयार हो सकते हैं। और अच्छा है कि तैयार नहीं होते। नहीं तो पूरा समाज पागलखाना हो जाए। थोड़े से लोग ही हो सकते हैं। और वह भी इसीलिए हो पाते हैं कि मौलिक रूप से वे रुग्ण हैं, और विक्षिप्त हैं। उनके मस्तिष्क में कहीं न कहीं कोई रोग है। वह एबनार्मल है। नार्कल नहीं हैं। तो जिस देश की ज्ञानधारा एबनाम आदमी को उपयोगी सिद्ध होती हो और नार्मल आदी को अनुपयोगी सिद्ध होती हो, वह आचरण में नहीं आ सकती। फिर यही हो सकता है कि दस-पांच बड़े-बड़े नाम लेने को पैदा हो जाए। शेष सारा का सारा समाज बिल्कुल उल्टा मालूम पड़ेगा। इसका जो गहरे से गहरा दृष्परिणाम होगा, वह यह होगा कि हम जो विकास करते हैं धारणाओं का, वह थोड़े से अतिवादी लोगों के काम पड़ता है, और सामान्य आदमी के जीवन को विकास करने की कोई धारणा ही हम विकसित नहीं करते। तो उसका परिणाम समझ लें।

अगर कोई समाज ऐसे नियम बना दे कि जो आदमी शीर्षासन करता है, वही अच्छा आदमी है और जितनी देर शीर्षासन करता है उतना ही अच्छा आदमी है, तो दस-पांच लोग मिल जाएंगे अहमदाबाद में जो दिन भर शीर्षासन करते रहे। बाकी लोग नहीं कर पाएंगे। जो नहीं कर पाएंगे, वह निंदित हो जाएंगे। नहीं कर पाएंगे तो उनकी पूजा करेंगे, जो कर रहे हैं। उनको हाथ जोड़कर नमस्कार करेंगे, कि ये बहुत महापुरुष हैं। लेकिन शीर्षासन करने वाले लोग भी किसी काम के सिद्ध होने वाले नहीं हैं। और शीर्षासन को आपने कोई केंद्रीय आदती बना लिया तो बाकी सब लोगों के जीवन आदर्शहीन हो जाएंगे। क्योंकि एक ही आदर्श है कि शीर्षासन जो कर ले तो कम हो गया। जो नहीं कर पाए वह आत्मग्लानि अनुभव करेगा। तो भारत में हर आदमी आत्मग्लानि से भरा हुआ है। और जो करने योग्य बताया जाता वह कर नहीं पाता है। इसलिए भारत का आचरण ऊपर नहीं उठ पाया। अगर हम आचरण को ऊपर उठाना चाहते हों तो हमें ज्ञान की पूरी फाउंडेशन बदल देनी पड़ेगी। एक तो परलोक से ज्ञान को मुक्त करना पड़ेगा। इस लोक से जोड़ना पड़ेगा। दुख से ज्ञान को

मुक्त करना पड़ेगा। और सुख से जोड़ना पड़ेगा। परमात्मा से ज्ञान को मुक्त करना पड़ेगा। पदार्थ से जोड़ना पड़ेगा। जीवन की एक आनंदपूर्ण--रसपूर्ण दृष्टि विकसित करनी पड़ेगी। और सामान्य और सरल और नैसर्गिक जो संभव है। एक सामान्य सरल--नैसर्गिक व्यक्ति के लिए--उसको ध्यान में रखकर पुनर्विचार करना पड़ेगा। तो इस देश का आचरण बदलेगा। नहीं तो इस देश का आचरण रोज ही नीचे गिरता चला जाएगा। तो मैं यह नहीं कहता हूं कि ज्ञान आपके पास ठीक-ठीक है। सिर्फ आचरण नहीं है। ज्ञान ही बुनियादी रूप से गलत है। इसलिए आचरण नहीं है। और अगर सिर्फ आचरण ठीक करने की आपने कोशिश की, तो वह तो कोशिश हम पांच हजार साल से कर रहे हैं। और ज्ञान को हम माने बैठे हैं कि वह ठीक है ही। सिर्फ आचरण को ठीक करना है। वह पांच हजार साल से असफल हुए हैं। आगे आप पचास हजार साल भी कोशिश करते रहें, आप असफल होते चले ज्यादा बुद्धिमान होता चला जाएगा।

यह जो ज्ञान था, जितना निबुद्धि समाज हो उसमें थोड़ा बहुत असर भी हो सकता था, लेकिन बुद्धिमान समाज में इसकी असफलता और भी निश्चित है। पूरे ज्ञान की पुनःर्विचारणा की जरूरत है।

इसी संबंध में एक प्रश्न और पूछा है। कि क्या आत्म-साक्षात्कार, सेल्फ-रिलाइजेशन सेवा के द्वारा नहीं होना चाहिए? क्या वही उचित नहीं है कि सेवा के द्वारा आत्म-साक्षात्कार हो?

इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि आत्म-साक्षात्कार न हुआ तो कोई आदमी कभी सेवा कर ही नहीं सकता। आत्म-साक्षात्कार के पहले तो सेवा असंभव है। आत्म-साक्षात्कार के पहले तो स्वार्थ ही संभव है। सेवा असंभव है। असल में--आत्म-साक्षात्कार से ही यह पता चलता है कि मैं और दूसरा तो नहीं है। आत्म-साक्षात्कार से ही यह पता चलता है कि जो दूसरा है वह भी मैं ही हूं। तो उसकी सेवा भी मेरा स्वार्थ बन जाती है। जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं है, मैं अलग हूं, आप अलग हैं। और अगर मैं सेवा भी करूंगा। तो सेवा भी ऊपर का धोखा और पाखंड होगी। भीतर कोई स्वार्थ ही होगा। हम चारों तरफ सेवकों को भली-भांति जानते हैं और देखते हैं। सेवक बुनियादी रूप से अगर आत्म-साक्षात्कार की दिशा में गया हुआ नहीं है, तो सेवा भी उसकी अहंकार की तृप्ति का--यश की तृप्ति का--महत्वाकांक्षा, एम्बीशन की तृप्ति का माध्यम बनेगी। और सेवक भी मौके की तलाश में रहेगा। कब मालिक हो जाए। हिंदुस्तान में हम देख रहे हैं, कि बीस साल में सेवक किस बुरी तरह मौलिक हो गए हैं। जिन-जिनने सेवा की है, वह इस बुरी तरह बदला ले रहे हैं कि आगे लोग सेवा करें तो बड़ा अच्छा है। सेवक सेवा करके फिर ऐसा बदला लेता है जिसका कोई हिसाब नहीं। और सिर्फ इस तलाश में रहते हैं कि कब मौका मिले कि वह आकर गर्दन पकड़ ले। सेवा हो ही नहीं सकती आत्म-साक्षात्कार के पूर्व। इसलिए कोई भूलकर न सोचे कि सेवा के द्वारा साक्षात्कार हो सकता है। आत्म-साक्षात्कार से सेवा निष्पन्न हो सकती है। आत्म-साक्षात्कार से सेवा जीवन बन सकती है। लेकिन सेवा से कोई आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। हम जानते हैं कि दुनिया में बहुत से लोग ऐसा मानते है कि वह सेवा कर रहे हैं। ईसाई मिशनरी हैं--सारी दुनिया में सेवा कर रहे हैं। उनकी नकल पर बने रामकृष्ण मिशन जैसे लोग हैं। वे सेवा कर रहे हैं। और सारी दुनिया में धीरे-धीरे बहुत सेवा करने वाले लोग हैं। सर्वोदय वाले हैं। और सब तरह के लोग हैं। अगर इनकी सेवा के पीछे इनकी मोटिविटी, इनके मोटिव, इन सबकी खोजबीन की जाए तो हैरानी होगी।

मैं एक छोटी सी कहानी कहूं आपसे। चीन में एक बहुत बड़ी जगह है। वहां एक मेला लगा हुआ है और कुआं है, जिसमें पाट नहीं हैं। एक आदमी उस कुएं मैं गिर गया है और चिल्ला रहा है कि मुझे बचाओ। तो वहां से एक बौद्ध भिक्षु निकलता है। यह नीचे झांककर देखता है। वह आदमी चिल्लाता है कि भिक्षु जी मुझे बाहर

निकालिए। मैं मर रहा हूं। मैं तैरना भी नहीं जानता और ज्यादा देर बच भी नहीं सकता। इट को कितनी देर पकड़े रहूंगा। वह भिक्षु कहता है, निकलकर भी क्या करोगे, बाहर भी दुख है। सब जगह दुख है। जो कुएं के बाहर हैं, वे भी एक बड़े कुएं में पड़े हैं। और भगवान ने कहा है--बुद्ध ने कहा, दुख तो जीवन है। तो जीवन से मुक्त हुए बिना दुख से कोई बाहर हो नहीं सकता। तो कुएं से भी निकलकर क्या करोगे? जीवन से निकलने की कोशिश करो। वह चिल्लाता है। मैं आपके उपदेश सुनूंगा। पहले मुझे बाहर निकाल लें। लेकिन वह भिक्षु कहता है कि यह भी भगवान ने कहा है कि दूसरे के कर्मों के बीच में बाधा नहीं आनी चाहिए। मैं तुम्हीं बचा लूं और तुम चोरी करो, और हत्या कर दो तो जिम्मेवार मैं भी हो जाऊंगा। मैं अपने रास्ते जाता हूं। तुम अपने रास्ते जाते हो। हमारा कहीं रास्ता कटता ही नहीं। मेरे अपने कर्मों की धारा है। तुम्हारी अपने कर्मों की धारा है। वह भिक्षु आगे चला जाता है।

उसके पीछे कन्फयूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आता है। वह नीचे झांककर देखता है। वह फिर चिल्लाता है। वह मरता हुआ आदमी कहता है, मुझे बचाओ। वह कन्फयूशियसवादी कहता है कि मैं तुम्हें बचाऊंगा जरूर तुम घबड़ाओ मत, कन्फयूशियस ने लिखा है अपनी किताब में, कि हर कुएं के ऊपर पाट जरूर होना चाहिए। जिस कुएं पर पाट न हो। जिस राज्य में बिना पाट के कुएं हों, वह राजा अधर्मी है। तुम घबड़ाओ मत। हम आंदोलन चलाएंगे। हर कुएं पर पाट बनवा देंगे। तुम बेफिकर रहो। हम आदमी कहता है। मैं बेफिकर कैसे रहूं। पाट जब बनेंगे-बनेंगे। मैं तो मर ही जाऊंगा। और वह आदमी कहता है--सवाल तुम्हारा नहीं--सवाल समाज का है। सवाल सबका है। मैं सब की सेवा में संलग्न हूं। एक-एक आदमी की सेवा कहां से करूंगा। और एक-एक आदमी की सेवा करूंगा तो समाज का क्या होगा? तुम बेफिकर रहो। मैं जाता हूं--मेले में अभी आंदोलन चलाता हूं। वह आदमी मेले में चला जाता है। मंच पर खड़े होकर लोगों को समझाने लगता है, हर कुएं पर पाट होना चाहिए। जो कुएं पर पाट बनवाता है--बड़ी सेवा करता है। जिस राज्य में कुएं पर पाट नहीं है वह राज्य बड़ा अधर्मी है।

उसके पीछे, एक ईसाई मिशनरी उस कुएं के घाट पर आता है। वह नीचे झांककर देखता है। वह आदमी चिल्लाता है। ईसाई मिशनरी झोले में से रस्सी निकालता है। रस्सी बांधकर कुएं में डालता है। उतरता है। उस आदमी को निकालकर बाहर लाना है। वह आदमी उसके पैर पर गिर जाता है और कहता है--तुम्हें एक सच्चे धार्मिक आदमी मालूम पड़ते हो। तुमने बड़ी कृपा की, जो बचाया। लेकिन मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि झोले में तुम रस्सी रखे कैसे थे? वह आदमी कहने लगा--हम घर से तैयारी करके निकलते हैं। सेवा ही हमारा धंधा है। हम पहले से ही तैयार होकर निकलते हैं कि कोई कुएं में गिरे। कहीं आग लगे। कहीं कुछ हो। तो हम तैयारी रखते हैं। हम सब तैयारी रखते हैं। हम तो सेवा की धर्म मानते हैं। क्योंकि भगवान ने कहा है--जीसस ने कहा है, कि जो सेवा करेगा, वही मोक्ष पा सकेगा। तुम कुएं में गिरे, तुमने बड़ी कृपा की। हमारे मोक्ष का मार्ग साफ हुआ। अपने बच्चों को भी समझा जाना कि कुओं में गिरें, ताकि हमारे बच्चे उन्हें कुओं से निकालते रहें। क्योंकि मोक्ष बिना सेवा के नहीं मिलता है।

मोक्ष पाना जरूरी है, तो सेवा करनी जरूरी है। या तो सेवा करने वाला मोक्ष पाने की कोशिश कर रहा है, तब भी स्वार्थ है। या सेवा करने वाला चारों तरफ अखबारों में खबर छपवाने की कोशिश कर रहा है। तब भी यश है। या सेवा करने वाला कुछ भीतरी बीमारियों--परेशानियों--चिंताओं से इतना घबड़ाया हुआ और परेशान है कि कुछ भी हनीं करना चाहता है। और कहीं भी अपने को आकुपाइड और व्यस्त कर देना चाहता है। तो वह उस काम में लगा हुआ है या वह किन्हीं पदों की यात्रा करना चाहता है और सेवा के द्वारा उन पदों पर

पहुंच जाना चाहता है। लेकिन, सेवा तभी सेवा बन सकती है जब किसी व्यक्ति को यह अनुभव हुआ हो कि मैं और तू के बीच जो फासला है वह झूठ है। मैं ही हूं। लेकिन यह आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। दूसरे का आनंद भी मेरा आनंद है। जिस दिन दूसरे के आनंद और मेरे आनंद में कोई बाधा नहीं, कोई दीवार नहीं, कोई भेद नहीं, दूसरे के आनंदित होने में ही मैं आनंदित हो जाता हूं, जिस दिन ऐसी संभावना बने, उस दिन तो सेवा हो सकती है। उसके पहले सेवा का नाम हो सकती है पीछे स्वार्थ ही होगा। और तब सेवा खतरनाक भी हो सकती है। अगर दुनिया में सेवकों के द्वारा मिस्चीफ का हम हिसाब लगाए--तो बहुत घबराहट होती है। जितने लोग दुनिया का सुधार करने और दुनिया की सेवा करने को उत्सुक हुए हैं, अगर उन सबने, जो परिणाम लाया है दुनिया में--उसको हम देखें, तो ऐसा लगेगा कि आदमी को उसके भाग्य पर छोड़ दो और सेवको, तुम जरा दूर हट जाओ--तो शायद दुनिया ठीक हो जाए। सब सेवा कर रहे हैं--इस्लाम सेवा कर रहा है। हिंदू सेवा कर रहे हैं। ईसाई सेवा कर रहे हैं, सारी दुनिया सेवा कर रही है। और सेवा का परिणाम क्या हो रहा है? ये सब सेवा करने वाले आदमी को कहां ले जा रहे हैं। किस गड्ढे में डाल रहे हैं? इस सेवा के पीछे प्रयोजन दूसरे ही है। इस सेवा के पीछे कारण दूसरे हैं। हेतु दूसरे हैं। और होंगे ही। क्योंकि जब तक कोई आत्म-साक्षात्कार को उपलब्ध न हुआ हो, तब तक हेतु से--मोटिव--से--स्वार्थ से मुक्त नहीं होता है। और अगर यह खयाल पकड़ जाए कि सेवा करनी ही है, तब और कठिनाई हो जाती है। मैंने एक घटना सुनी है--

एक स्कूल में एक ईसाई पादरी बच्चों को समझाता है कि सेवा जरूर करनी चाहिए। कम से कम एक दिन में एक सेवा का कार्य करना चाहिए। जब मैं दुबारा आऊं तो तुमसे, पूछूंगा। तुमने कोई सेवा का मार्ग किया? सात दिन बाद वह आता है और बच्चों से पूछता है। एक बच्चा हाथ हिलाता है कि मैंने सेवा की। दूसरा बच्चा, तीसरा बच्चा, तीन बच्चे तीस बच्चों में से हाथ हिलाते हैं कि हमने सेवा की। यह पादरी कहता है, बहुत बड़ा काम किया। फिर भी तीस ने सेवा की। तब भी ठीक है। वह पहले से पूछता है, तुमने क्या सेवा की है? वह बच्चा कहता है, मैंने एक बूढ़ी स्त्री को सड़क के बाहर करवाया। कहता है बहुत अच्छा किया। बूढ़ी स्त्रियों को सड़क के पार करवाना चाहिए। दूसरे से पूछा, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को सड़क के पार करवाया। तब उसे थोड़ा शक होता है, कि बुढ़िया मिल गई। फिर वह सोचता है, इतनी बुढ़िया हैं। को दिक्कत नहीं। दो भी मिल सकती है। वह तीसरे से पूछता है, तूने क्या किया है? वह कहता है, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क के पार करवाया। तब वह थोड़ा हैरान होता है। वह कहता है--तुम्हें तीन बुढ़िया मिल गयी? उन्होंने कहा, नहीं तीन बुढ़िया नहीं थी, एक ही बूढ़ी थी। हम तीनों ने मिलकर पार करवाया। वह कहता है, क्या बूढ़ी इतनी अशक्त हालत में थी कि अकेला कोई पार हनीं करवा सकता था? वह बोले, अशक्त नहीं थी, काफी मजबूत थी। और बिल्कुल पार होना ही नहीं चाहती थी बामुश्किल हम पर करवा पाए हैं। और आपने कहा था, सेवा का कोई कार्य करना चाहिए। आपने कहा था, किसी बूढ़े को रास्ता पार करवा दो। किसी डूबते को बचाओ। किसी आग लगने वाले को निकालो। तो हमें सबसे सरल यही मालूम पड़ा कि किसी बूढ़े को हम रास्ता पार करा दे।

अगर एक बार दिमाग में यह खयाल पकड़ाया जाए कि सेवा करो। तो सेवा करना दिमाग के लिए मोक्ष या स्वर्ग या अच्छे आदमी होने का आधार बन जाए तो सेवा मिस्चीफ हो जाने वाली है। और मिस्चीफ हो गयी है। नहीं, मैं नहीं मानता हूं, कि सेवा कोई आत्म-साक्षात्कार है। सेल्फ-रियलाइजेशन का रास्ता है। सेल्फ-रिशलाइजेशन का रास्ता तो बढ़िया दूसरा है। वह तो ध्यान है। या समाधि है। हां, ध्यान और समाधि के मार्ग से चला हुआ व्यक्ति जब स्वयं के साक्षात की थोड़ी सी झलक पाता है तो उसे झलके की परिणति सेवा में होनी

शुरू हो जाती है। वह सेवा बात ही और है। वह आदमी को पता भी नहीं चलता है कि मैंने किसी की सेवा की है। उसे यह भी पता नहीं चलता कि सेवा करके मैंने कोई उपकार किया। उसे यह भी पता नहीं चलना कि सेवा की है तो कुछ विशेष किया है। यह सेवा उसके लिए सहज स्वभाव बन जाती है। और जिस दिन सेवा स्वभाव बने उसी दिन अर्थपूर्ण है, उसके पहले अर्थपूर्ण नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप मानवता की बात करते हैं तो क्या आप को इस्लाम में पूर्ण हुआ नहीं पाते हैं?

किसी वाद मग या किसी सिद्धांत में मानवता कभी पूर्ण नहीं हो सकती है। जहां वाद, जहां इज्म है, जहां शास्त्र है, जहां सिद्धांत है, जहां आइडियालाजी है--जहां आदमी को आदमी से तोड़ने का उपाय है। कोई आइडियालाजी आदमी-आदमी को जोड़ नहीं सकती। मुझे और आपको जो तोड़ता है, वह विचार है। मेरा एक विचार है, आपका दूसरा विचार है। टूट शुरू हो गयी। इस्लाम बात करता है, मनुष्यता की लेकिन इस्लाम ने मनुष्यता की जितनी हत्या की है उतनी किसी और ने की है? इस्लाम शब्द का मतलब होता है शांति। जितनी अशांति इस्लाम ने फैलाई है उतनी किसी दूसरे ने फैलायी है? सारी दुनिया के धर्म यह बात करते हैं कि हम सबको जोड़ना चाहते हैं। लेकिन कोई धर्म सबको नहीं जोड़ पाया। बल्कि हर धर्म छोटे से टुकड़े को तोड़कर और अलग खड़ा हो गया है। हर नया धर्म तोड़ने का एक नया उपाय बनता है। जोड़ने का तो नहीं बनता। तो फिर कुछ सोचना पड़ेगा। कि तोड़ने और जोड़ने की प्रक्रिया क्या है?

जब भी मैं किसी विचार को संगठित करूंगा तब किसी के खिलाफ संगठन होना शुरू हो जाएगा। जब भी विचार संगठित होगा, हमेशा घृणा पर खड़ा होता है और विरोध में खड़ा होता है। इस्लाम संगठित होगा तो किसके खिलाफ? और हिंदू संगठित होंगे तो किसके खिलाफ? और मुसलमान संगठित होंगे तो किसके खिलाफ? और कम्युनिस्ट संगठित होंगे तो किसके खिलाफ? संगठन सदा किसी के खिलाफ इकट्ठा होता है। संगठन प्रेम से नहीं बनते। अब तक प्रेमियों के कोई संगठन नहीं बनाए हैं। सब घृणा करने वाले लोगों के संगठन है। चाहे उनके नाम कुछ हों, नारे कुछ हों, तरकीब कुछ हो। लेकिन संगठन दूसरे की दुश्मनी में बनता है। और सब आइडियालाजी संगठित होना चाहती हैं। चाहे वह इस्लाम हो--चाहे कोई और हो। चाहे ईसाइयत हो, चाहे जैन हो, चाहे बौद्ध हो। मात्रा के भेद हो सकते हैं। लेकिन सिद्धांत जब संगठित होता है तो वह एक गढ़ बनता है। और उस गढ़ के अपने स्वार्थ बनने शुरू हो जाते हैं। उसका वेस्टेड इन्ट्रेस्ट शुरू हो जाता है। और उस गढ़ के बाहर जो हैं वह दुश्मन हो जाते हैं। और उन दुश्मनों को लड़ना, उनको कन्वर्ट करना, उनको बदलना, उनको अपने घेरे में लाना, सारा काम शुरू हो जाता है। फिर मनुष्यता के हित में मनुष्यता की हत्या शुरू हो जाती है। मेरी दृष्टि में--मनुष्यता उस दिन एक होगी जिस दिन एक करने वाला कोई इज्म जमीन पर नहीं होगा। और एक-एक आदमी अकेला-अकेला होगा। उस दिन मनुष्यता एक हो जाएगी। जब तक संगठन है तब तक मनुष्यता एक नहीं हो सकती है। जब तक राष्ट्र है तब तक मनुष्यता एक नहीं हो सकती है। जब तक इज्म है--चाहे इस्लाम--चाहे कोई और--तब तक मनुष्यता एक नहीं हो सकती। मनुष्यता एक होगी, एक-एक व्यक्ति की अपनी मौलिक इकाई रह जाए। और कुछ लोग संगठित होने की कोशिश बंद कर दें। तो मनुष्यता एक हो जाएगी। अब यह बड़े मजे की बात है कि जो एक करते हैं वही तोड़ने वाले हैं। जो भी नारा देता हैं कि इकट्ठे हो जाओ, वही खतरनाक लोग हैं। जब भी कोई नारा दे कि इकट्ठे हो जाओ तो सावधान हो जाना चाहिए कि यह आदमी झगड़ा पैदा करवाएगा। चाहे वह इकट्ठा होना किसी नाम से हो--वह कहें, इस्लाम मानने वाले इकट्ठे हों। वह कहें भारतीय इकट्ठे हों। जब भी वह कहेगा कि लोग इकट्ठे हों, तब दुश्मन को खड़ा करेगा।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा मग एक बढ़िया बात लिखी है। उसने लिखा है कि अगर किसी को भी इकट्ठा होना हो तो खतरा पैदा करना जरूरी है। और दुश्मन बनाना जरूरी है। बिना दुश्मन बनाए और खतरा पैदा किए कोई इकट्ठा नहीं हो सकता। चाहे सच्चा दुश्मन हो, चाहे झूठा दुश्मन खड़ा करो। चाहे खतरा असली हो, चाहे ऐसी ही हवा पैदा करो कि इस्लाम खतरे में हैं। हिंदू धर्म खतरे में है। कौन खतरे में है? मर जाने दो हिंदू धर्म को, इस्लाम को। किसका क्या बिगड़ता है? इस्लाम के खतरे में होने से खतरा किसको है? किसी को कोई खतरा नहीं है। लेकिन खतरे मग है--यह हवा पैदा करा--डर पैदा करो। डरा हुआ आदम--चार डरे हुए आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि वह कहते हैं, अकेले में डर ज्यादा रहेगा। चार इकट्ठे हो जाओ। जब वह चार इकट्ठे होते हैं, उनके पड़ोसी चार देखते हैं कि चार इकट्ठे हो रहे हैं। कोई न कोई गड़बड़ है, खतरा है। हम भी चार इकट्ठे हो जाएं। बस उपद्रव शुरू हो गया। फिर राष्ट्र बनेंगे। जातियां बनेंगी। धर्म बनेंगे। सब तरह की बेवकूफियां पैदा होगी।

दुनिया से संगठन का नारा बंद होना चाहिए। किसी संगठन की कोई जरूरत नहीं है। आदमी अकेला काफी है। संगठन की जरूरत क्या है? संगठित किस लिए--लड़ना है तो संगठन की जरूरत है। नहीं लड़ना है, तो संगठन की क्या जरूरत है? तो जो भी संगठन हैं, वह सब मनुष्यों के दुश्मन है। चाहे उनके नाम कुछ भी हों। और जो भी संगठन करवाने वाले हैं वह सब मनुष्यता के हत्यारे हैं, चाहे उनके नमा कुछ भी हों। अब तो ऐसे लोग चाहिए जो सब संगठनों को तोड़ देने के, सब संगठनों को विकेंद्रित कर देने के, सब संगठनों को डिआर्गनाइज कर देन के, और एक-एक व्यक्ति को मूल्य देने के पक्ष में हों। संगठन को मूल्य नहीं देना है। एक-एक व्यक्ति को मूल्य देना है। आप-आप हैं। मैं-मैं हूं। मुझे और आपको संगठित होने की क्या जरूरत है? इस दुनिया में संगठन बिल्कुल ही अनावश्यक है। संगठन की क्या आवश्यकता है? हां, इस तरह के संगठन हो सकते हैं--रेलवे हैं, पोस्ट ऑफिस है, इस तरह के संगठन हो सकते हैं। फंक्शनल, जिनसे कोई जेहाद खड़ा नहीं होता। कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता। पोस्ट आफिस वाले संगठन करके यह नहीं कहते कि हम रेलवे वालों से ऊंचे है। हम झगड़ा खड़ा करेंगे। सब रेलवे वालों को पोस्ट आफिस वाला बनाएंगे। कोई जरूरत नहीं है, रेलवे वाले रेलवे का काम करते हैं। पोस्ट आफिस वाले पोस्ट आफिस का काम करते हैं। इस तरह आर्गनाइजेशन--फंक्शनल आर्गनाइजेशन तो दुनिया में हों। लेकिन आइडियालॉजी पर खड़े हुए संगठन दुनिया में नहीं चाहिए। चाहे उनका नाम कुछ भी हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए किसी संगठन ने मनुष्यता को आगे नहीं बढ़ाया। और कोई संगठन मनुष्यता को आगे बढ़ा नहीं सकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि अध्यात्मवाद कुछ थोड़े से धनिक लोगों के लिए है। आप ऐसा क्यों नहीं सोचते कि वह गरीब जनता के लिए भी धर्म-मुक्ति का साधन बन सके?

पहली बात तो यह है कि धर्म गरीब जनता के लिए मुक्ति का साधन न तो कभी बना है, और न बन सकता है। हां, अफीम जरूर गरीब जनता के लिए बन सकता है कि वह अपनी गरीबी में बेहोश रहने के लिए एक तरकीब पा जाए। और अपनी गरीबी को झेलने के लिए एक तरह की सांत्वना और संतोष उसे मिल सके। गरीब जनता धर्म के नाम पर बेहोश रखी जा सकती है। और वही आज तक किया गया है। गरीब आदमी की बात नहीं कर रहा हूं--गरीब जनता की। कोई एकाध गरीब आदमी हो सकता है जो धर्म को अपनी मुक्ति का मार्ग भी बना ले। व्यक्ति हो सकता है। गरीब व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। लेकिन यह बड़ी अपवाद घटना होगी। और अत्यधिक बुद्धिमान होना चाहिए ऐसे व्यक्ति को जो गरीब होकर धार्मिक हो सके। उसका कारण मैं आपको समझाना चाहूंगा।

मेरी दृष्टि में अमीर आदमी की ही धार्मिक होने की संभावना का द्वार खुलता है। जरूरी नहीं है, कि अमीर आदमी धार्मिक हो जाए। आवश्यक नहीं है। लेकिन संभावना का द्वार खुलता है। और क्यों? क्योंकि मेरी मान्यता है कि शरीर की जरूरतें जब तक कि पूरी न हो जाए, आत्मा की जरूरतें मांग नहीं करती है। नीची जरूरतें जब पूरी हो तो ऊंची जरूरतों का चौलेंज शुरू होता है। यह असंभव है कि एक भूखे आदमी को सितार सीखने का खयाल आ जाए। आ भी सकता है एकाध आदमी को। और वह इसलिए भी आ सकता है, कि शायद सितार को बजाने में भूख भूल जाए। सितार बजाने में भूख थोड़ी देर भूली भी जा सकती है। लेकिन सितार बजाने का खयाल भूख में करीब-करीब असंभव है। पेट भरने का खयाल ही सहज है। जब शरीर की जरूरतें पूरी हो हुई हों तो मन की, आत्मा की और ऊपर की हायर जरूरतें पैदा ही नहीं होती। गरीब समाज इसीलिए धार्मिक कभी नहीं हो सकता। गरीब-समाज धर्म की बातें कर सकता है। मंदिर में पूजा-प्रार्थना कर सकता है। यज्ञ, जप, हवन कर सकता है। करता है--खूब करता है। लेकिन उकस कारण धार्मिक नहीं होता है। गरीब आदमी मंदिर भी जाएगी तो रोटी मांगने जाएगा। गरीब आदमी पूजा भी करेगा तो नौकरी मिस जाए, इसके लिए करेगा। गरीब आदमी यज्ञ, हवा, हवन, सत्यनारायण की कथा में भी बैठना है, लेकिन उसके प्रयोजन हमेशा पेट से बंधे हुए होंगे। उसके प्रयोजन पेट से मुक्त नहीं हो सकते। उसका धर्म भी किसी न किसी रूप में पेट की मांग पूरी करने की चेष्टा होगी। और धर्म से पेट की कोई मांग पूरी नहीं हो सकती। धर्म से पेट की मांग पूरी होती ही नहीं। क्योंकि धर्म से पेट की मांग का कोई संबंध नहीं है। धर्म से चित्त की गहरी मांग पूरी होती है। लेकिन चित्त की मांग करने का तल तो आना चाहिए। उसका तल तब आता है जब सामान्य जीवन की सारी सुविधाएं पूरी हो जाती हैं। और एक व्यक्ति की शरीर के तल पर कोई चिंता नहीं रह जाती। और पहली बार सुविधा मिलती हैं, जिसको हम कहें, लीजर मिलता है, विश्राम मिलता है। उस विश्राम में ही पहली दफें ऊपर की मांगे शुरू होती हैं। वह आदमी पूछता है, खाना-पीना-कपड़ा सब पूरा हुआ--अब क्या? धर्म जो है, वह आदमी की आखिरी लक्जरी है। गलत है। यह नहीं कह रहा हूं, लेकिन धन से मिली सुविधा की अंतिम इच्छा और कामना है। गलत है, यह भी नहीं कह रहा हूं, लेकिन लक्जरी--वह सुविधा की है। अंतिम सुविधा मग वह खयाल उठने शुरू होते हैं।

और धनी आदमी को मौका भी है कि वह उसके सामने खोज भी कर सके। गरीब आदमी को मौका भी नहीं है कि वह खोज कर सके। लेकिन धनी आदमी चाहता है कि गरीब आदमी धार्मिक बना रहे। और धनी आदमी गरीब को इसलिए धार्मिक बनाए रखना चाहते हैं कि अगर गरीब आदमी धार्मिक न रहा तो धनी का धनी रहना बहुत मुश्किल में पड़ जाने वाला है। क्योंकि गरीब आदमी जब तक संतुष्ट है, किन्हीं भी आधारों पर, और जब तक वह अपनी गरीबी को मिटाने की चेष्टा में पूरी। तरह संलग्न नहीं है, तब तक धनी आदमी धन इकट्ठा किए जा सकता है। सारी दुनिया मग में पूंजीवाद को व्यवस्था को सब से बड़ा सहारा तथाकथित धर्म देता है। और धनी आदमी चाहता है कि गरीब को समझाओ इसलिए धनी आदमी मंदिर भी बनवाता है। बिड़ला कोई ऐसे ही मंदिर नहीं बनवा देता है। सारी दुनिया में बिड़लाओं ने मंदिर बनाए हैं। चर्च खड़े किए हैं। वह अकारण नहीं है। जो हो सकता है, बिड़लाओं को पता भी न हो, कि वह किस लिए मंदिर बना रहे है? लेकिन बहुत गहरे में--वह जो चेतना है पूंजीवाद की, वह चेतना मंदिर बनाती है, धर्मशालाएं बनाती है, औषधालय खोलती है। वह गरीब को गरीब रहते हुए तृप्त रहने की व्यवस्था के सारे उपाय खोलती है। और वह सारे के सारे उपदेशकों, साधुओं, संन्यासियों को पालती है कि वह गरीब को समझाएं कि संतोष बड़ा धर्म है, सहिष्णुता बड़ी बात है, और तुम गरीब हो--पिछले जन्म के पापों के कारण, अगर अच्छे कर्म करोगे तो आगे तुम

भी अमीर हो जाओगे। और वह जो अमीर है, वह पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अमीर है। और गरीब की आंख पर सब तरह की पट्टियां बांधी जाती हैं। अमीर के हित में है, कि गरीब धार्मिक हो। गरीब के हित में बिल्कुल नहीं है कि गरीब धार्मिक हो। और गरीब धार्मिक हो ही हनीं सकता। झूठा धार्मिक हो सकता है। इसलिए मेरा कहना यह है, मैं नहीं कहता हूं कि कुछ थोड़े से अमीर लोगों के लिए मैं धर्म को छोड़ता हूं। मेरा मतलब वह है कि अमीरी बांटनी चाहिए, ताकि सब के लिए धर्म हो सके। अमीरी बांटनी पड़ेगी तो समाज धार्मिक होगा। अमीरी बंधी रहेगी कुछ लोगों तो तो देश धार्मिक नहीं होगा। मेरी दृष्टि में समाजवादी व्यवस्था ही धार्मिक समाज को ठीक अर्थों में जन्म दे सकेगी।

और एक मित्र ने पूछा है कि पहले के इतने ऊंचे सिद्धांत हैं, समाज ऊंचा क्यों नहीं होता?

समाज ऊंचा नहीं हो सकता। क्योंकि समाज का पूरा का पूरा ढांचा गलत है। समाज ऊंचा हो सकेगा, समाज का पूरा ढांचा बदलना पड़ेगा। गरीब समाज ईमानदार कैसे हो सकता है। गरीब समाज चोरी से कैसे बच कसता है? गरीब समाज लड़ाई-झगड़ों से कैसे बच सकता है? गरीब समाज का चित्त क्षुद्रताओं से बच ही नहीं सकता। असंभव है बचना। ये सारी क्षुद्रताएं, अनैतिकताएं, यह सारी आचरण हीनता अनिवार्य है। और इसको समझाओ कि तुम आचरण ठीक रखो। चित्त शुद्ध रखो। यह सब नासमझी कि बातें हैं। यह सब होने वाला नहीं है। यह सब पूंजीवाद के लिए शाक आब्जर्वर की व्यवस्था करना है। धक्का न लग जाए पूंजीवाद को। यह ध्यान रखो कि सब तरह के धक्के आएं और पूंजी वाद बच जाए। धर्म, धर्मगुरु, पुरोहित पूंजीवाद को बचाने की हजारों वर्ष से चेष्टा कर रहा है। इसीलिए पुरोहित को पूंजीपति सम्मान देता है। सम्मान देती है। गरीब और अमीर के बीच पुरोहित सबसे बड़ी क्रांति की रुकावट है--दीवार है। साधु और संन्यासी क्रांति के लिए सबसे बड़ी दीवार है। तो मैं कहता हूं--मेरा कहना यह है, कि सारा समाज संपन्न होना चाहिए। संपत्ति सामान्यतया जगह-जगह केंद्रित न होकर विकेंद्रित और फैली हुई होनी चाहिए, और एक-एक आदमी को, प्रत्येक आदमी को इतनी सुविधा होनी चाहिए कि शरीर की छोटी-छोटी, व्यर्थ की अटकाने वाली जरूरतें पूरी हो जाए। सेक्स, भोजन और मकान यह किसी आदमी को अकारण पीड़ित न करे। इतनी व्यवस्था समाज को जुटा देनी चाहिए। उसके बाद आदमी के धार्मिक होने की यात्रा शुरू हो सकती है। लेकिन इन सब की हम व्यवस्था जुटाने को राजी नहीं है। और अब तो बड़े आश्चर्य की बात है, क्योंकि पहले तो यह असंभव था कि सारे लोग संपन्न हो सकें। अब यह बिल्कुल संभव है। आज से दो साल पहले यह असंभव रहा, कि सारे लोग संपन्न हो सकें, इसलिए, दो साल। पहले समाज की जिम्मेदार ठहराना गलत है। मजबूरी थी। इतनी संपत्ति पैदा ही नहीं हो सकती थी, कि हर आदमी संपन्न हो सके। लेकिन इन दो सौ वर्षों में टेक्नोलाजी ने हमें वहां ला दिया है कि अब अगर संपत्ति पैदा नहीं होती, तो कुछ गलत आदती और कुछ गलत स्वार्थ संपत्ति को पैदा होने से रोक रहे है। अन्यथा संपत्ति अब इतनी पैदा हो सकती है, कि अब किसी आदमी के गरीब होने की कोई जरूरत नहीं रह गयी है। टेक्नोलाजी का ठीक उपयोग हो तो संपत्ति बरस पड़ेगी और ऋषियों-मुनियों ने स्वर्ग में जिस सुविधा की कल्पना की थी वह सब पचास वर्षा के भीतर पूरी पृथ्वी पर एक एक आदमी के लिए हो सकती है। सब स्वर्ग वगैरह जाने की और अप्सराओं को स्वर्ग में खोजने की--कल्प वृक्ष के नीचे बैठने की, कोई जरूरत नहीं है। वे अप्सराएं और वे कल्प वृक्ष सब इसी पृथ्वी पर खड़े हो सकते है। टेक्नोलाजी ने उतनी सुविधा जुटा दी है। लेकिन, समाज का जो ढांचा है--बिल्कुल ही गलत है। राष्ट्रों का जो ढांचा है, वह बिल्कुल ही गलत है। राष्ट्र बंटे रहेंगे, तो गरीब राष्ट्र रहेंगे, अमीर राष्ट्र रहेंगे। और अभी तब तो एक दिक्कत थी, गरीब आदमी था, अमीर आदमी था। अब एक नई दिक्कत खड़ी हुई है कि गरीब राष्ट्र हैं और अमीर राष्ट्र हैं। अब एक बिल्कुल ने तल पर झंझट शुरू हुई है। यह झंझट कभी

न थी। आज अमरीका तो एक अमीर राष्ट्र हो गया, और हम एक क्षुद्र गरीब राष्ट्र हैं। तब भीख मांगने के सिवाय कोई हैसियत नहीं है। अगर अब राष्ट्र नहीं मिटते तो अमरीका में जो संभावना हो गयी है, वह हमको अभी उपलब्ध नहीं हो सकती। यदि राष्ट्र मिट जाए तो वह सारी संभावना हमको उपलब्ध हो सकती है जो उनको उपलब्ध हो गयी है। राष्ट्र मिटने चाहिए।

लेकिन राष्ट्र कैसे मिटेंगे? अगर वहां ही नहीं मिटते तो राष्ट्र कैसे मिटेंगे? वर्ग मिटने चाहिए, जाति मिटनी चाहिए, सीमाएं मिटनी चाहिए, और हमें अब कुछ इस भाषा में सोचना चाहिए, कि हम सब मिलकर ज्यादा से ज्यादा आनंदित कैसे हो सकते है। कल तक हमने ऐसा ही सोचा था कि मैं कैसे सुखी हो सकता हूं। सुविधा भी न थी सबके सुखी होने की। एक सुखी हो सकता था। दस के दुख पर। दस दुखी होते तो ही एक सुखी हो सकता था। अब वह बात खत्म हो गयी। अब ग्यारह ही सुखी हो सकते हैं। अब किसी एक को दस के दुख पर सुखी होने की जरूरत नहीं रही। और सच तो यह है कि अगर दस दुखी हों और एक सुखी हो तो एक सिर्फ भ्रम में होता है। सुखी वही हो नहीं पाता है। क्योंकि दस को दुखी करने में जिस प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है उस प्रक्रिया में वह इतना चिंतित, पीड़ित और परेशान हो जाता है, जिसका हिसाब नहीं। यह जो निरंतर कहा जाता है कि धन से कोई सुख नहीं मिलता, उसका और कोई कारण नहीं है। धन से बहुत सुख मिल सकता है। धन से सुख नहीं मिलता है क्योंकि धन चारों तरफ गरीबी पैदा कर देता है। आज तक धन से सुख नहीं मिला। लेकिन रूस में धन से सुख मिल रहा है। रूस में यह बात कहनी गलत होंगी कि धन से कोई सुख नहीं मिलता। यह बात ही बेवकूफी की है कि धन से सुख नहीं मिलता है। धन तो साधन है। बहुत सुख ला सकता है। लेकिन आज तक लाया नहीं। महावीर और बुद्ध ने जो कुछ कहा है कि धन से कोई सुख नहीं मिलता, यह बात अब बिल्कुल गलत है। महावीर के समय मग ठीक थी। क्योंकि महावीर ने जो धन इकट्ठा किया, उनके बाप-दादों ने, वह सारा का सारा धन चारों तरफ इतनी गरीबी पैदा कर गया, कि महावीर जैसे बुद्धिमान आदमी को लगा कि धन से सुख मिल सकता है? यह तो पुण्य है, इससे सुख नहीं मिल सकता है--इसको छोड़ दो। लेकिन महावीर को भी समझ में नहीं आया कि तुम्हारे छोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम्हारा चचेरा भाई उसका मालिक हो जाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बुद्ध धन को छोड़ देते हैं, तो बुद्ध का कोई रिश्तेदार धन का मालिक हो जाता है। यह खयाल में नहीं आ सका। बुद्ध और महावीर को धन से सुख न मिलने का कारण यह है, कि धन को इकट्ठा करने की प्रक्रिया में इतने लोग गरीब हो जाते हैं, समाज इतना विपन्न हो जाता है। इतने दुख की लहरें फैल जाती हैं कि एक आदमी कैसे सुखी हो सकता है। समझ लीजिए कि अहमदाबाद में अगर मेरे स्वस्थ होने की यह कंडीशन हो कि पूरा अहमदाबाद बीमार हो जाए, तब मैं स्वस्थ हो सकता हूं, और यह शर्त हो। और मेरे स्वस्थ होने में सारे अहमदाबाद को बीमार हो जाना पड़े, तो क्या मैं उस बीमार अहमदाबाद में स्वस्थ रह सकूंगा? यह असंभव हो जाएगा। और अगर मैंने इंतजाम भी कर लिया, बड़ी दीवार उठा लीं, पहरे लगा लिए, बड़ी बंदूकें लगवा दीं, बड़े डाक्टरों की कतार लगा दी और उनके भीतर छिप कर मैं स्वस्थ रहने लगा, तो उस स्वस्थ की सुरक्षा में जो इंतजाम करना पड़ेगा, वह बीमारी भोगने से ज्यादा कष्टपूर्ण हो जाने वाला हो जाएगा। और वह हो जाएगा। और वह हो गया है। धन से कोई सुख नहीं मिला किसी को। धन की अब तक इकट्ठी होने की प्रक्रिया गलत थी। बिना किसी को गरीब बनो धन इकट्ठा नहीं होता है। आने वाली दुनिया में हमें यह फिकर करनी चाहिए। धन पैदा हो। लेकिन इकट्ठा न हो। धन बंटे। और धन तक फैले। हम इस भाषा में सोचें कि कोई अमीर गरीब न हो पाए, सब संपन्न हो पाएं।